अध्याय - ४३-४४

महासमाधि की ओर (२)

पूर्व तैयारी-समाधि मन्दिर, ईट का खंडन, ७२ घण्टे की समाधि, जोग का संन्यास, बाबा के अमृततुल्य वचन।

इन ४३ और ४४ अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है, इसलिये वे यहाँ संयुक्त रूप में लिखे जा रहे हैं।

पूर्व तैयारीः समाधि मंदिर

हिन्दुओं में यह प्रथा प्रचलित है कि जब किसी मनुष्य का अन्तकाल निकट आ जाता है तो उसे धार्मिक ग्रन्थ आदि पढ़कर सुनाये जाते हैं। इसका मुख्य कारण केवल यही है कि जिससे उसका मन सासारिक झंझटों से मुक्त होकर आध्यात्मिक विषयों में लग जाय और वह प्राणी कर्मवश अगले जन्म में जिस योनि को धारण करे, उसमें उसे सद्‌गति प्राप्त हो। सर्वसाधारण को यह विदित ही है कि जब राजा परीक्षित को एक ब्रह्मर्षि पुत्र ने शाप दिया और एक सप्ताह के पश्चात् ही उनका अन्तकाल निकट आया तो महात्मा शुकदेव ने उन्हें उस सप्ताह में श्रीमद्‌भागवत पुराण का पाठ सुनाया, जिससे उनको मोक्ष की प्राप्ति हुई। यह प्रथा अभी भी अपनाई जाती है। महानिर्वाण के समय गीता, भागवत और अन्य ग्रन्थों का पाठ किया जाता है। बाबा तो स्वयं अवतार थे, इसलिये उन्हें बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं थी; परन्तु केवल दूसरों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करने के हेतु ही उन्होंने इस प्रथा की उपेक्षा नहीं की। जब उन्हें विदित हो गया कि मैं अब शीघ्र इस नश्वर देह का त्याग करूँगा, तब उन्होंने श्री. वझे को 'रामविजय' प्रकरण सुनाने की आज्ञा दी। श्री. वझे ने एक सप्ताह प्रतिदिन पाठ सुनाया। तत्पश्चात् ही बाबा ने उन्हें आठों प्रहर पाठ करने की आज्ञा दी। श्री. वझे ने उस अध्याय की द्वितीय आवृत्ति तीन दिन में पूर्ण कर दी और इस प्रकार ११ दिन बीत गये। फिर तीन दिन और उन्होंने पाठ किया। अब श्री. वझे बिलकुल थक गये।

इसलिये उन्हें विश्राम करने की आज्ञा हुई। बाबा अब बिलकुल शान्त बैठ गये और आत्मस्थित होकर वे अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा करने लगे। दो-तीन दिन पूर्व ही प्रातःकाल से बाबा ने भिक्षाटन करना स्थगित कर दिया और वे मसजिद में ही बैठे रहने लगे। वे अपने अन्तिम क्षण के लिये पूर्ण सचेत थे, इसलिये वे अपने भक्तों को धैर्य तो बँधाते रहते, पर उन्होंने किसी से भी अपने महानिर्वाण का निश्चित समय प्रगट न किया। इन दिनों काकासाहेब दीक्षित और श्रीमान् बूटी बाबा के साथ मसजिद में नित्य ही भोजन करते थे। महानिर्वाण के दिन (१५ अक्टूबर को) आरती समाप्त होने के पश्चात् बाबा ने उन लोगों को भी अपने निवासस्थान पर ही भोजन करके लौटने को कहा। फिर भी लक्ष्मीबाई शिंदे, भागोजी शिंदे, बयाजी, लक्ष्मण बाला शिम्पी और नानासाहेब निमोणकर वहीं रह गये। शामा नीचे मसजिद की सीढ़ियों पर बैठे थे। लक्ष्मीबाई शिन्दे को ९ रुपये देने के पश्चात् बाबा ने कहा कि "मुझे मसजिद में अब अच्छा नहीं लगता है, इसलिये मुझे बूटी के पत्थर वाड़े में ले चलो, जहाँ मैं सुखपूर्वक रहूँगा।" ये ही अन्तिम शब्द उनके श्रीमुख से निकले। इसी समय बाबा बयाजी के शरीर की ओर लटक गये और अन्तिम श्वास छोड़ दी। भागोजी ने देखा कि बाबा की श्वास रुक गई है, तब उन्होंने नानासाहेब निमोणकर को पुकार कर यह बात कही। नानासाहेब ने कुछ जल लाकर बाबा के श्रीमुख में डाला, जो बाहर लुढ़क आया। तभी उन्होंने जोर से आवाज लगाई "अरे! देवा!" तब बाबा ऐसे दिखाई पड़े, जैसे उन्होंने धीरे से नेत्र खोलकर धीमे स्वर में 'ओह' कहा हो। परन्तु अब स्पष्ट विदित हो गया कि उन्होंने सचमुच ही शरीर त्याग दिया है।

"बाबा समाधिस्थ हो गये" - यह हृदयविदारक दुःसंवाद दावानल की भाँति तुरन्त ही चारों ओर फैल गया। शिरडी के सब नर-नारी और बालकगण मसजिद की ओर दौड़े। चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी के हृदय पर वज्रपात हुआ। उनके हृदय विचलित होने लगे। कोई जोर-जोर से चिल्लाकर रुदन करने लगे। कोई सड़कों पर लोटने लगा और बहुत से बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। प्रत्येक की आँखों से झर-झर आँसू गिर रहे थे। प्रलय काल के वातावरण में तांडव नृत्य का जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है, वही गति शिरडी के नर-नारियों के रुदन से उपस्थित हो गई। उनके इस महान् दुःख में कौन आकर उन्हें धैर्य बँधाता, जब कि उन्होंने साक्षात् सगुण परब्रह्म का सान्निध्य खो दिया था? इस दुःख का वर्णन भला कर ही कौन सकता है?

"अब कुछ भक्तों को श्री साई बाबा के वचन याद आने लगे। किसी ने कहा कि

महाराज (साई बाबा) ने अपने भक्तों से कहा था कि "भविष्य में वे आठ वर्ष के बालक के रूप में पुनः प्रगट होंगे।" ये एक सन्त के वचन हैं और इसलिए किसी को भी उन पर सन्देह नहीं करना चाहिये, क्योंकि कृष्णावतार में भी चक्रपाणि (भगवान विष्णु) ने ऐसी ही लीला की थी। श्रीकृष्ण माता देवकी के सामने आठ वर्ष की आयु वाले एक बालक के रूप में प्रगट हुये, जिनका दिव्य तेजोमय स्वरूप था और जिनके चारों हाथों में आयुध (शंख, चक्र, गदा और पद्म) सुशोभित थे। अपने उस अवतार में भगवान श्रीकृष्ण ने भू-भार हलका किया था। साई बाबा का यह अवतार अपने भक्तों के उत्थान के लिए हुआ था। तब फिर संदेह की गुंजाइश ही कहाँ रह जाती है? सन्तों की कार्यप्रणाली अगम्य होती है। साई बाबा का अपने भक्तों के साथ यह संपर्क केवल एक ही पीढ़ी का नहीं, बल्कि यह उनका पिछले ७२ जन्मों का संपर्क है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का प्रेम-सम्बन्ध विकसित करके महाराज (श्री साई बाबा) दौरे पर चले गये हैं और भक्तों को दृढ़ विश्वास है कि वे शीघ्र ही पुनः वापस आ जायेंगे।"

अब समस्या उत्पन्न हुई कि बाबा के शरीर की अन्तिम क्रिया किस प्रकार की जाय? कुछ यवन लोग कहने लगे कि उनके शरीर को कब्रिस्तान में दफन कर उसके ऊपर एक मकबरा बना देना चाहिये। खुशालचन्द और अमीर शक्कर की भी यही धारणा थी, परंतु ग्राम्य अधिकारी श्री. रामचंद्र पाटील ने दृढ़ और निश्चयात्मक स्वर में कहा कि "तुम्हारा निर्णय मुझे मान्य नहीं है। शरीर को वाड़े के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं रखा जायेगा।" इस प्रकार लोगों में मतभेद उत्पन्न हो गया और वह वादविवाद ३६ घण्टों तक चलता रहा।

बुधवार के दिन प्रातःकाल बाबा ने लक्ष्मण मामा जोशी को स्वप्न दिया और उन्हें अपने हाथ से खींचते हुए कहा कि "शीघ्र उठो, बापूसाहेब समझता है कि मैं मृत हो गया हूँ। इसलिये वह तो आयेगा नहीं। तुम पूजन और कांकड़ आरती करो।" लक्ष्मण मामा ग्राम के ज्योतिषी, शामा के मामा तथा एक कर्मठ ब्राह्मण थे। वे नित्य प्रातःकाल बाबा का पूजन किया करते, तत्पश्चात् ही ग्राम देवियों और देवताओं का। उनकी बाबा पर दृढ़ निष्ठा थी, इसलिये इस दृष्टांत के पश्चात् वे पूजन की समस्त सामग्री लेकर वहाँ आये और ज्यों ही उन्होंने बाबा के मुख का आवरण हटाया तो उस निर्जीव अलौकिक महान् प्रदीप्त प्रतिभा के दर्शन कर वे स्तब्ध रह गये, मानो हिमांशु ने उन्हें अपने पाश में आबद्ध करके जड़वत् बना दिया हो। स्वप्न की स्मृति ने उन्हें अपना कर्त्तव्य करने को प्रेरित कर दिया। फिर उन्होंने मौलवियों के विरोध की कुछ भी चिंता न कर

विधिवत् पूजन और कांकड़ आरती की। दोपहर को बापूसाहेब जोग भी अन्य भक्तों के साथ आये और सदैव की भाँति मध्याह्न की आरती की।

बाबा के अन्तिम श्री-वचनों को आदरपूर्वक स्वीकार करके लोगों ने उनके शरीर को बूटी वाड़े में ही रखने का निश्चय किया और वहाँ का मध्य भाग खोदना आरम्भ कर दिया। मंगलवार की सन्ध्या को राहाता से सब-इन्स्पेक्टर और भिन्न-भिन्न स्थानों से अनेक लोग वहाँ आकर एकत्र हुए। सब लोगों ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल बम्बई से अमीर भाई और कोपरगाँव से मामलेदार भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि लोग अभी भी एकमत नहीं है। तब उन्होंने मतदान करवाया और पाया कि अधिकांश लोगों का बहुमत वाड़े के पक्ष में ही है। फिर भी वे इस विषय में कलेक्टर की स्वीकृति अति आवश्यक समझते थे। तब काकासाहेब स्वयं अहमदनगर जाने को उद्यत् हो गये, परन्तु बाबा की प्रेरणा से विपक्षियों ने भी प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन सबने मिलकर अपना मत भी वाड़े के ही पक्ष में दिया। अतः बुधवार की सन्ध्या को बाबा का पवित्र शरीर बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ वाड़े में लाया गया और विधिपूर्वक उस स्थान पर समाधि बना दी गई, जहाँ 'मुरलीधर' की मूर्ति स्थापित होने को थी। सच तो यह है कि बाबा 'मुरलीधर' बन गये और वाड़ा 'समाधि-मन्दिर' तथा भक्तों का एक पवित्र देवस्थान, जहाँ अनेकों भक्त आया जाया करते थे और अभी भी नित्य-प्रति वहाँ आकर सुख और शान्ति प्राप्त करते हैं। बालासाहेब भाटे और बाबा के अनन्य भक्त श्री. उपासनी ने बाबा की विधिवत् अन्तिम क्रिया की।

जैसा प्रोफेसर नारके को देखने में आया, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाबा का शरीर ३६ घण्टे के उपरांत भी जड़ नहीं हुआ और उनके शरीर का प्रत्येक अवयव लचीला (Elastic) बना रहा, जिससे उनके शरीर पर से कफनी बिना चीरे हुए सरलता से निकाली जा सकी।

ईंट का खण्डन

बाबा के निर्वाण के कुछ समय पूर्व एक अपशकुन हुआ, जो इस घटना की पूर्वसूचना-स्वरूप था। मसजिद में एक पुरानी ईंट थी, जिसपर बाबा अपना हाथ टेककर रखते थे। रात्रि के समय बाबा उस पर सिर रखकर शयन किया करते थे। यह कार्यक्रम अनेक वर्षों तक चला। एक दिन बाबा की अनुपस्थिति में एक बालक ने मसजिद में झाडू लगाते समय वह ईंट अपने हाथ में उठाई। दुर्भाग्यवश वह ईंट उसके

हाथ से गिर पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गये। जब बाबा को इस बात की सूचना मिली तो उन्हें उसका बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगे कि "यह ईंट नहीं फूटी है, मेरा भाग्य ही फूटकर छिन्न-भिन्न हो गया है। यह तो मेरी जीवनसंगिनी थी और इसको अपने पास रखकर मैं आत्म-चिंतन किया करता था। यह मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय थी और उसने आज मेरा साथ छोड़ दिया है।" कुछ लोग यहाँ शंका कर सकते हैं कि बाबा को ईंट जैसी एक तुच्छ वस्तु के लिये इतना शोक क्यों करना चाहिये? इसका उत्तर हेमाडपन्त इस प्रकार देते हैं कि सन्त जगत के उद्धार तथा दीन और अनाश्रितों के कल्याणार्थ ही अवतीर्ण होते हैं। जब वे नरदेह धारण करते हैं और जनसम्पर्क में आते हैं तो वे इसी प्रकार आचरण किया करते हैं, अर्थात् बाह्य रूप से वे अन्य लोगों के समान ही हँसते, खेलते और रोते हैं, परन्तु आन्तरिक रूप से वे अपने अवतार-कार्य और उसके ध्येय के लिये सदैव सजग रहते हैं।

७२ घण्टे की समाधि

इसके ३२ वर्ष पूर्व भी बाबा ने अपनी जीवन-रेखा पार करने का एक प्रयास किया था। १८८६ में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन बाबा को दमा से अधिक पीड़ा हुई और इस व्याधि से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने अपने प्राण ब्रह्मांड में चढ़ाकर समाधि लगाने का विचार किया। अतएव उन्होंने भगत म्हालसापति से कहा कि "तुम मेरे शरीर की तीन दिन तक रक्षा करना और यदि मैं वापस लौट आया तो ठीक ही है, नहीं तो उस स्थान (एक स्थान को इंगित करते हुए) पर मेरी समाधि बना देना और दो ध्वजायें चिह्न स्वरूप फहरा देना।" — ऐसा कहकर बाबा रात में लगभग दस बजे पृथ्वी पर लेट गये। उनका श्वासोच्छ्वास बन्द हो गया और ऐसा दिखाई देने लगा कि जैसे उनके शरीर में प्राण ही न हों। सभी लोग, जिनमें ग्रामवासी भी थे, वहाँ एकत्रित हुए और शरीर परीक्षण के पश्चात् शरीर को उनके द्वारा बताये हुए स्थान पर समाधिस्थ कर देने का निश्चय करने लगे। परन्तु भगत म्हालसापति ने उन्हें ऐसा करने से रोका और उनके शरीर को अपनी गोद में रखकर वे तीन दिन तक उसकी रक्षा करते रहे। तीन दिन व्यतीत होने पर रात को लगभग तीन बजे प्राण लौटने के चिह्न दिखलाई पड़ने लगे। श्वासोच्छ्वास पुनः चालू हो गया और उनके अंग-प्रत्यंग हिलने लगे। उन्होंने नेत्र खोल दिये और करवट लेते हुए वे पुनः चेतना में आ गये।

इस प्रसंग तथा अन्य प्रसंगों पर दृष्टिपात कर अब हम यह पाठकों पर छोड़ते हैं कि वे ही इसका निश्चय करें कि क्या बाबा अन्य लोगों की भाँति ही साढ़े तीन हाथ लम्बे

एक देहधारी मानव थे, जिस देह को उन्होंने कुछ वर्षों तक धारण करने के पश्चात् छोड़ दिया, या वे स्वयं आत्मज्योतिस्वरूप थे। पंच महाभूतों से शरीर निर्मित होने के कारण उसका नाश और अन्त तो सुनिश्चित है, परन्तु जो सद्वस्तु (आत्मा) अन्तःकरण में है, वही यथार्थ में सत्य है। उसका न रूप है, न अंत है और न नाश। यही शुद्ध चैतन्य घन या ब्रह्म - इंद्रियों और मन पर शासन और नियंत्रण रखने वाला जो तत्त्व है, वही 'साई' है, जो संसार के समस्त प्राणियों में विद्यमान है और जो सर्वव्यापी है। अपना अवतार-कार्य पूर्ण करने के लिये ही उन्होंने देह-धारण किया था और वह कार्य पूर्ण होने पर उन्होंने उसे त्याग कर पुनः अपना शाश्वत और अनंत स्वरूप धारण कर लिया। श्री दत्तात्रेय के पूर्ण अवतार-गाणगापुर के श्रीनृसिंह सरस्वती के समान श्री साई भी सदैव वर्तमान हैं। उनका निर्वाण तो एक औपचारिक बात है। वे जड़ और चेतन सभी पदार्थों में व्याप्त हैं तथा सर्व भूतों के अन्तःकरण के संचालक और नियंत्रणकर्ता हैं। इसका अभी भी अनुभव किया जा सकता है और अनेकों के अनुभव में आ भी चुका है, जो अनन्य भाव से उनके शरणागत हो चुके हैं और जो पूर्ण अंतःकरण से उनके उपासक हैं।

यद्यपि बाबा का स्वरूप अब देखने को नहीं मिल सकता है, फिर भी यदि हम शिरडी को जायें तो हमें वहाँ उनका जीवित-सदृश चित्र मसजिद (द्वारकामाई) को शोभायमान करते हुए अब भी देखने में आयेगा। यह चित्र बाबा के एक प्रसिद्ध भक्त-कलाकार श्री. शामराव जयकर ने बनाया था। एक कल्पनाशील और भक्त दर्शक को यह चित्र अभी भी बाबा के दर्शन के समान ही सन्तोष और सुख पहुँचाता है। बाबा अब देह में स्थित नहीं हैं, परन्तु वे सर्वभूतों में व्याप्त हैं और भक्तों का कल्याण पूर्ववत् ही करते रहे हैं, करते रहेंगे, जैसा कि वे सदेह रहकर किया करते थे। बाबा सन्तों के समान अमर हैं, चाहे वे नरदेह धारण कर लें, जो कि एक आवरण मात्र है, परन्तु वे तो स्वयं भगवान श्री हरि हैं, जो समय-समय पर भूतल पर अवतीर्ण होते हैं।

बापूसाहेब जोग का संन्यास

जोग के संन्यास की चर्चा कर हेमाडपन्त यह अध्याय समाप्त करते हैं। श्री. सखाराम हरी उर्फ बापूसाहेब जोग पूने के प्रसिद्ध वारकरी विष्णु बुवा जोग के काका थे। वे लोक कर्म विभाग (P.W.D.) में पर्यवेक्षक (Supervisor) थे। सेवा-निवृत्ति के

पश्चात् वे सपत्नीक शिरडी में आकर रहने लगे। उनके कोई सन्तान न थी। पति और पत्नी दोनों की ही साई चरणों में अटल श्रद्धा थी। वे दोनों अपने दिन उनकी पूजा और सेवा करने में ही व्यतीत किया करते थे। मेघा की मृत्यु के पश्चात् बापूसाहेब जोग ने बाबा की महासमाधि पर्यन्त मसजिद और चावड़ी में आरती की। उनको साठे वाड़ा में श्री ज्ञानेश्वरी और श्री एकनाथी भागवत का वाचन तथा उसका भावार्थ श्रोताओं को समझाने का कार्य भी दिया गया था। इस प्रकार अनेक वर्षों तक सेवा करने के पश्चात् उन्होंने एक बार बाबा से प्रार्थना की कि – "हे मेरे जीवन के एकमात्र आधार! आपके पूजनीय चरणों का दर्शन कर समस्त प्राणियों को परम शांति का अनुभव होता है। मैं इन श्रीचरणों की अनेक वर्षों से निरंतर सेवा कर रहा हूँ, परन्तु क्या कारण है कि आपके चरणों की छाया के सन्निकट होते हुए भी मैं उनकी शीतलता से वंचित हूँ। मेरे इस जीवन में कौन-सा सुख है, यदि मेरा चंचल मन शान्त और स्थिर बनकर आपके श्रीचरणों में मग्न नहीं होता? क्या इतने वर्षों का मेरा सन्तसमागम व्यर्थ ही जायेगा? मेरे जीवन में वह शुभ घड़ी कब आयेगी, जब आपकी मुझपर कृपा दृष्टि होगी?"

भक्त की प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई। उन्होंने उत्तर दिया कि थोड़े ही दिनों में अब तुम्हारे अशुभ कर्म समाप्त हो जायेंगे तथा पाप और पुण्य जलकर शीघ्र ही भस्म हो जायेंगे। मैं तुम्हें उस दिन ही भाग्यशाली समझूँगा, जिस दिन तुम ऐन्द्रिक-विषयों को तुच्छ जानकर समस्त पदार्थों से विरक्त होकर पूर्ण अनन्य भाव से ईश्वर भक्ति कर संन्यास धारण कर लोगे। कुछ समय पश्चात् बाबा के वचन सत्य सिद्ध हुये। उनकी स्त्री का देहान्त हो जाने पर उनकी अन्य कोई आसक्ति शेष न रही। वे अब स्वतंत्र हो गये और उन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व संन्यास धारण कर अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

बाबा के अमृततुल्य वचन

दयानिधि कृपालु श्री साई समर्थ ने मस्जिद (द्वारिकामाई) में अनेक बार निम्नलिखित सुधोपम वचन कहे थेः–

"जो मुझे अत्यधिक प्रेम करता है, वह सदैव मेरा दर्शन पाता है। उसके लिए मेरे बिना सारा संसार ही सूना है। वह केवल मेरा ही लीलागान करता है। वह सतत मेरा ही ध्यान करता है और सदैव मेरा ही नाम जपता है। जो पूर्ण रूप से मेरी शरण में आ जाता है और सदा मेरा ही स्मरण करता है, अपने ऊपर उसका यह ऋण मैं उसे मुक्ति (आत्मोपलब्धि) प्रदान करके चुका दूँगा।

जो मेरा ही चिन्तन करता है और मेरा प्रेम ही जिसकी भूख-प्यास है और जो पहले मुझे अर्पित किये बिना कुछ भी नहीं खाता, मैं उसके अधीन हूँ। जो इस प्रकार मेरी शरण में आता है, वह मुझसे मिलकर उसी तरह एकाकार हो जाता है, जिस तरह नदियाँ समुद्र से मिलकर तदाकार हो जाती हैं। अतएव महत्ता और अहंकार का सर्वथा परित्याग करके तुम्हें मेरे प्रति, जो तुम्हारे हृदय में आसीन है; पूर्ण रूप से समर्पित हो जाना चाहिए।"

यह 'मैं' कौन है?

श्री साईबाबा ने अनेक बार समझाया कि यह 'मैं' कौन है। इस 'मैं' को ढूँढ़ने के लिये अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे नाम और आकार से परें 'मैं' तुम्हारे अन्तःकरण और समस्त प्राणियों में चैतन्यघन स्वरूप में विद्यमान हूँ और यही 'मैं' का स्वरूप है। ऐसा समझकर **तुम अपने तथा समस्त प्राणियों में मेरा ही दर्शन करो। यदि तुम इसका नित्य प्रति अभ्यास करोगे तो तुम्हें मेरी सर्वव्यापकता का अनुभव शीघ्र हो जायेगा और मेरे साथ अभिन्नता प्राप्त हो जायेगी।**

अतः हेमाडपन्त पाठकों को नमन कर उनसे प्रेम और आदरपूर्वक विनम्र प्रार्थना करते हैं कि उन्हें समस्त देवताओं, सन्तों और भक्तों का आदर करना चाहिये। बाबा सदैव कहा करते थे कि **जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, वह मेरे हृदय को दुःख देता है तथा मुझे कष्ट पहुँचाता है। इसके विपरीत जो स्वयं कष्ट सहन करता है, वह मुझे अधिक प्रिय है।** बाबा समस्त प्राणियों में विद्यमान हैं और उनकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं। समस्त जीवों से प्रेम करो, यही उनकी आंतरिक इच्छा है। इस प्रकार का विशुद्ध अमृतमय स्रोत उनके श्री मुख से सदैव झरता रहता था। अतः जो प्रेमपूर्वक बाबा का लीलागान करेंगे या उन्हें भक्तिपूर्वक श्रवण करेंगे, उन्हें 'साई' से अवश्य अभिन्नता प्राप्त होगी।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - ४५

संदेह निवारण

काकासाहेब दीक्षित का सन्देह और आनन्दराव का स्वप्न, बाबा के विश्राम के लिये लकड़ी का तख्ता।

प्रस्तावना

गत तीन अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब बाबा का साकार स्वरूप लुप्त हो गया है, परन्तु उनका निराकार स्वरूप तो सदैव ही विद्यमान रहेगा। अभी तक केवल उन्हीं घटनाओं और लीलाओं का उल्लेख किया गया है, जो बाबा के जीवनकाल में घटित हुई थीं। उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् भी अनेक लीलाएँ हो चुकी हैं और अभी भी देखने में आ रही हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि **बाबा अभी भी विद्यमान हैं और पूर्व की ही भाँति अपने भक्तों को सहायता पहुँचाया करते हैं।** बाबा के जीवन-काल में जिन व्यक्तियों को उनका सान्निध्य या सत्संग प्राप्त हुआ, यथार्थ में उनके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है? यदि किसी को फिर भी ऐंद्रिक और सांसारिक सुखों से वैराग्य प्राप्त नहीं हो सका तो इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? जो उस समय आचरण में लाया जाना चाहिये था और अभी भी लाया जाना चाहिये, वह है अनन्य भाव से बाबा की भक्ति। समस्त चेतनाओं, इन्द्रिय-प्रवृत्तियों और मन को एकाग्र कर बाबा के पूजन और सेवा की ओर लगाना चाहिये। कृत्रिम पूजन से क्या लाभ? यदि पूजन या ध्यानादि करने की ही अभिलाषा है तो वह शुद्ध मन और अन्तःकरण से होनी चाहिये।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री का विशुद्ध प्रेम अपने पति पर होता है, इस प्रेम की उपमा कभी-कभी लोग शिष्य और गुरु के प्रेम से भी दिया करते हैं। परन्तु फिर भी शिष्य और गुरु-प्रेम के समक्ष पतिव्रता का प्रेम फीका है और उसकी कोई समानता नहीं की जा सकती। माता, पिता, भाई या अन्य सम्बन्धी जीवन का ध्येय (आत्मसाक्षात्कार)

प्राप्त करने में कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते। इसके लिये हमें स्वयं अपना मार्ग अन्वेषण कर आत्मानुभूति के पथ पर अग्रसर होना पड़ता है। सत्य और असत्य में विवेक, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों का त्याग, इन्द्रियनिग्रह और केवल मोक्ष की धारणा रखते हुए अग्रसर होना पड़ता है। दूसरों पर निर्भर रहने के बदले हमें आत्मविश्वास बढ़ाना उचित है। जब हम इस प्रकार विवेक-बुद्धि से कार्य करने का अभ्यास करेंगे तो हमें अनुभव होगा कि यह संसार नाशवान् और मिथ्या है। इस प्रकार की धारणासे सांसारिक पदार्थोंमें हमारी आसक्ति उत्तरोत्तर घटती जायेगी और अन्त में हमें उनसे वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। तब कहीं आगे चलकर यह रहस्य प्रकट होगा कि ब्रह्म हमारे गुरु के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं, वरन् यथार्थ में वे ही सद्वस्तु (परमात्मा) हैं और यह रहस्योद्घाटन होता है कि यह दृश्यमान जगत् उनका ही प्रतिबिम्ब है। अतः इस प्रकार हम सभी प्राणियों में उनके ही रूप का दर्शन कर उनका पूजन करना प्रारम्भ कर देते हैं और यही समत्त्वभाव दृश्यमान जगत् से विरक्ति प्राप्त करानेवाला भजन या मूलमंत्र है। इस प्रकार जब हम ब्रह्म या गुरु की अनन्यभाव से भक्ति करेंगे तो हमें उनसे अभिन्नता की प्राप्ति होगी और आत्मानुभूति की प्राप्ति सहज हो जायेगी। संक्षेप में यह कि सदैव गुरु का कीर्तन और उनका ध्यान करना ही हमें सर्वभूतों में भगवत् दर्शन करने की योग्यता प्रदान करता है और इसी से परमानंद की प्राप्ति होती है। निम्नलिखित कथा इस तथ्य का प्रमाण है।

काकासाहेब का सन्देह तथा आनन्दराव का स्वप्न

यह तो सर्वविदित ही है कि बाबा ने काकासाहेब दीक्षित को श्री एकनाथ महाराज के दो ग्रन्थ (१) श्रीमद्भागवत और (२) भावार्थ रामायण का नित्य पठन करने की आज्ञा दी थी। काकासाहेब इन ग्रन्थों का नियमपूर्वक पठन बाबा के समय से करते आये हैं और बाबा के समाधिस्थ होने के उपरान्त अभी भी वे उसी प्रकार अध्ययन कर रहे हैं। एक समय चौपाटी (बम्बई) में काकासाहेब प्रातःकाल एकनाथी भागवत का पाठ कर रहे थे। माधवराव देशपांडे (शामा) और काका महाजनी भी उस समय वहाँ उपस्थित थे तथा ये दोनों ध्यानपूर्वक पाठ श्रवण कर रहे थे। उस समय ११ वें स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का वाचन चल रहा था, जिसमें नवनाथ अर्थात् ऋषभ वंश के सिद्ध यानी कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन का वर्णन है, जिन्होंने भागवत धर्म की महिमा राजा जनक को समझायी थी। राजा जनक ने इन नव-नाथों से बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे और इन सभी ने उनकी शंकाओं का बड़ा सन्तोषजनक समाधान किया था, अर्थात् कवि ने भागवत धर्म, हरि ने भक्ति की

विशेषताएँ, अंतरिक्ष ने माया क्या है, प्रबुद्ध ने माया से मुक्त होने की विधि, पिप्पलायन ने परब्रह्म के स्वरूप, आविर्होत्र ने कर्म के स्वरूप, द्रुमिल ने परमात्मा के अवतार और उनके कार्य, चमस ने नास्तिक की मृत्यु के पश्चात् की गति एवं करभाजन ने कलिकाल में भक्ति की पद्धतियों का यथाविधि वर्णन किया। इन सबका अर्थ यही था कि कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन केवल हरिकीर्तन या गुरु-चरणों का चिंतन ही है। पठन समाप्त होने पर काकासाहेब बहुत निराशापूर्ण स्वर में माधवराव और अन्य लोगों से कहने लगे कि नवनाथों की भक्ति पद्धति का क्या कहना है, परन्तु उसे आचरण में लाना कितना दुष्कर है? नाथ तो सिद्ध थे, परन्तु हमारे समान मूर्खों में इस प्रकार की भक्ति का उत्पन्न होना क्या कभी संभव हो सकता है? अनेक जन्म धारण करने पर भी वैसी भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती तो फिर हमें मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकेगा? ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लिये तो कोई आशा ही नहीं है। माधवराव को यह निराशावादी धारणा अच्छी न लगी। वे कहने लगे कि हमारा अहोभाग्य है, जिसके फलस्वरूप ही हमें साई सदृश अमूल्य हीरा हाथ लग गया है; तब फिर इस प्रकार निराशा का राग अलापना बड़ी निन्दनीय बात है। यदि तुम्हें बाबा पर अटल विश्वास है तो फिर इसप्रकार चिंतित होने की आवश्यकता ही क्या है? माना कि नवनाथों की भक्ति अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ और प्रबल होगी, परन्तु क्या हम लोग भी प्रेम और स्नेहपूर्वक भक्ति नहीं कर रहे हैं? क्या बाबा ने अधिकारपूर्ण वाणी में नहीं कहा है कि श्रीहरि या गुरु के नाम जप से मोक्ष की प्राप्ति होती है? तब फिर भय और चिन्ता को स्थान ही कहाँ रह जाता है? परन्तु फिर भी माधवराव के वचनों से काकासाहेब का समाधान न हुआ। वे फिर भी दिन भर व्यग्र और चिन्तित ही बने रहे। यह विचार उनके मस्तिष्क में बार-बार चक्कर काट रहा था कि किस विधि से नवनाथों के समान भक्ति की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी?

एक महाशय, जिनका नाम आनन्दराव पाखाडे था, माधवराव को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ आ पहुँचे। उस समय भागवत का पठन हो रहा था। श्री. पाखाडे भी माधवराव के समीप ही जाकर बैठ गये और उनसे धीरे-धीरे कुछ वार्त्ता भी करने लगे। वे अपना स्वप्न माधवराव को सुना रहे थे। इनकी कानाफूसी के कारण पाठ में विघ्न उपस्थित होने लगा। अतएव काकासाहेब ने पाठ स्थगित कर माधवराव से पूछा कि क्यों, क्या बात हो रही है? माधवराव ने कहा कि कल तुमने जो सन्देह प्रगट किया था, यह चर्चा भी उसी का समाधान है। कल बाबा ने श्री. पाखाडे को जो स्वप्न दिया है, उसे इनसे ही सुनो। इसमें बताया गया है कि **विशेष भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं; केवल गुरु को नमन या उनका पूजन करना ही पर्याप्त है।** सभी को स्वप्न सुनने की तीव्र

उत्कंठा थी और सबसे अधिक काकासाहेब को। सभी के कहने पर श्री. पाखाडे अपना स्वप्न सुनाने लगे, जो इस प्रकार है:- "मैंने देखा कि मैं एक अथाह सागर में खड़ा हुआ हूँ। पानी मेरी कमर तक है और अचानक ही जब मैंने ऊपर देखा तो साईबाबा के श्री-दर्शन हुए। वे एक रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान थे और उनके श्री-चरण जल के भीतर थे। यह सुन्दर दृश्य और बाबा का मनोहर स्वरूप देख मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। इस स्वप्न को भला कौन स्वप्न कह सकेगा? मैंने देखा कि माधवराव भी बाबा के समीप ही खड़े हैं और उन्होंने मुझसे भावुकतापूर्ण शब्दों में कहा कि "आनन्दराव! बाबा के श्रीचरणों पर गिरो।" मैंने उत्तर दिया कि "मैं भी तो यही करना चाहता हूँ, परन्तु उनके श्री-चरण तो जल के भीतर हैं। अब बताओ कि मैं कैसे अपना शीश उनके चरणों पर रखूँ। मैं तो निस्सहाय हूँ।" इन शब्दों को सुनकर शामा ने बाबा से कहा कि "अरे देवा! जल में से कृपाकर अपने चरण बाहर निकालिये न।" बाबा ने तुरन्त चरण बाहर निकाले और मैं उनसे तुरन्त लिपट गया। बाबा ने मुझे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि अब तुम आनंदपूर्वक जाओ। घबड़ाने या चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम्हारा कल्याण होगा। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि एक जरी के किनारों की धोती मेरे शामा को दे देना, इससे तुम्हें बहुत लाभ होगा।"

बाबा की आज्ञा को पूर्ण करने के लिये ही श्री. पाखाडे धोती लाये और काकासाहेब से प्रार्थना की कि कृपा करके इसे माधवराव को दे दीजिये, परन्तु माधवराव ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि जब तक बाबा से मुझे कोई आदेश या अनुमति प्राप्त नहीं होती, तब तक मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ। कुछ तर्क-वितर्क के पश्चात् काका ने दैवी आदेशसूचक पर्चियाँ निकालकर इस बात का निर्णय करने का विचार किया। काकासाहेब का यह नियम था कि जब उन्हें कोई सन्देह हो जाता तो वे कागज की दो पर्चियों पर 'स्वीकार-अस्वीकार' लिखकर उसमें से एक पर्ची निकालते और जो कुछ उत्तर प्राप्त होता था, उसके अनुसार ही कार्य किया करते थे। इसका भी निपटारा करने के लिये उन्होंने उपर्युक्त विधि के अनुसार ही दो पर्चियाँ लिखकर बाबा के चित्र के समक्ष रखकर एक अबोध बालक को उसमें से एक पर्ची उठाने को कहा। बालक द्वारा उठाई गई पर्ची जब खोलकर देखी गई तो वह स्वीकारसूचक पर्ची ही निकली और तब माधवराव को धोती स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार आनंदराव और माधवराव सन्तुष्ट हो गये और काकासाहेब का भी सन्देह दूर हो गया।

इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि **हमें अन्य संतों के वचनों का उचित आदर करना चाहिये, परन्तु साथ ही साथ यह भी परम आवश्यक है कि हमें अपनी**

माँ अर्थात् गुरु पर पूर्ण विश्वास रख, उनके आदेशों का अक्षरशः पालन करना चाहिये, क्योंकि अन्य लोगों की अपेक्षा हमारे कल्याण की उन्हें अधिक चिन्ता है।

बाबा के निम्नलिखित वचनों को हृदयपटल पर अंकित कर लो- **इस विश्व में असंख्य सन्त हैं, परन्तु अपना पिता (गुरु) ही सच्चा पिता (सच्चा गुरु) है। दूसरे चाहे कितने ही मधुर वचन क्यों न कहते हों, परन्तु अपना गुरु-उपदेश कभी नहीं भूलना चाहिये।** संक्षेप में सार यही है कि शुद्ध हृदय से अपने गुरु से प्रेम कर, उनकी शरण जाओ और उन्हें श्रद्धापूर्वक साष्टांग नमस्कार करो। तभी तुम देखोगे कि तुम्हारे सम्मुख भवसागर का अस्तित्व वैसा ही है, जैसा सूर्य के समक्ष अँधेरे का।"

बाबा की शयन शैया-लकड़ी का तख्ता

बाबा अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में एक लकड़ी के तख्ते पर शयन किया करते थे। वह तख्ता चार हाथ लम्बा और एक बीता चौड़ा था, जिसके चारों कोनों पर चार मिट्टी के जलते दीपक रखे जाया करते थे। पश्चात् बाबा ने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले थे। (जिसका वर्णन गत अध्याय दस में हो चुका है)। एक समय बाबा उस पटिये की महत्ता का वर्णन काकासाहेब को सुना रहे थे, जिसको सुनकर काकासाहेब ने बाबा से कहा कि यदि अभी भी आपको उससे विशेष स्नेह है तो मैं मसजिद में एक दूसरी पटिया लटकाये देता हूँ। आप सुखपूर्वक उस पर शयन किया करें। तब बाबा कहने लगे कि "अब म्हालसापति को नीचे छोड़कर मैं ऊपर नहीं सोना चाहता।"

काकासाहेब ने कहा कि "यदि आज्ञा दें तो मैं एक और तख्ता म्हालसापति के लिये भी टाँग दूँ।"

बाबा बोले कि "वे इस पर कैसे सो सकते हैं? क्या यह कोई सहज कार्य है? जो उसके गुण से सम्पन्न हो, वही ऐसा कार्य कर सकता है। जो खुले नेत्र रखकर निद्रा ले सके, वही इसके योग्य है। जब मैं शयन करता हूँ तो बहुधा म्हालसापति को अपने बाजू में बिठाकर उनसे कहता हूँ कि मेरे हृदय पर अपना हाथ रखकर देखते रहो कि कहीं मेरा भगवज्जप बन्द न हो जाय और मुझे यदि थोड़ा-सा भी निद्रित देखो तो तुरंत जागृत कर दो, परन्तु उससे तो यह भी नहीं हो सकता। वह तो स्वयं ही झपकी लेने

लगता है और निद्रामग्न होकर अपना सिर डुलाने लगता है और जब मुझे भगत का हाथ पत्थर-सा भारी प्रतीत होने लगता है तो मैं जोर से पुकार उठता हूँ कि "ओ भगत"। तब कहीं वह घबड़ा कर नेत्र खोलता है। जो पृथ्वी पर ही अच्छी तरह बैठ और सो नहीं सकता तथा जिसका आसन सिद्ध नहीं है और जो निद्रा का दास है, वह क्या तख्ते पर सो सकेगा?"[१] अन्य अनेक अवसरों पर वे भक्तों के स्नेहवश ऐसा कहा करते थे कि **"अपना अपने साथ और उसका उसके साथ।"**

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

१. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥ - गीता २/६९